भारतीय साहित्य का स्वरूप

रोहिताश्व शर्मा

भारतीय साहित्य के स्वरूप की विवेचना के अन्तर्गत भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं, क्षेत्रों और शैलियों का साहित्य समादृत है। भारतीय भाषाओं के विकास क्रम में वैदिक संस्कृत, संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश एवं अन्यान्य भारतीय भाषाओं की चर्चा पृष्ठभूमि में की जाती है। सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास का काल नवीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी तक माना जाता है। दक्षिण प्रदेश में तेलुगू और कन्नड़ भाषा में पार्थक्य ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में होता है तो गुजराती और राजस्थानी भाषा में अलगाव 13वीं व 14वीं शताब्दी के विकास काल में होता है। उर्दू भाषा का अस्तित्व तो पिछले छह सौ वर्षों की देन है।

विद्वानों के सामने यह बात स्पष्ट है कि भारत एक बहुभाषी देश है। संविधान की अष्टम अनुसूची के अनुरूप लगभग 24 भाषाओं की चर्चा की जाती है। लेकिन भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों, क्षेत्रों, स्थानों में कई विभिन्न भाषा-बोलियों का अस्तित्व है। लेकिन लिपि के अभाव में, व्यापक जन-संचार माध्यमों में उनका अस्तित्व कहीं-कहीं खतरे में है। बोडों, गारों भाषा-बोली को स्वीकृति मिली है पर तुलु भाषा-बोली का अस्तित्व खतरे में है। कभी जार्ज ग्रियर्सन ने भारतीय भाषा-सर्वेक्षण में 2005 बोलियों और भाषाओं का जिक्र बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में किया था। लेकिन जिस भाषा-लिपि में लिखा या पढ़ा जाता है उसके साहित्य को मानक रूप में ग्रहण कर उसे साहित्य की संज्ञा दी जाती है।

भारतीय साहित्य को 'विभिन्नता में एकता' और 'एकता के विभिन्नता' का साहित्य माना जाता है। जिस प्रकार अनेक ऐतिहासिक युगों व वर्षों के आपसी सम्पर्क और सामाजिक द्विभाषिकता के कारण भारतीय भाषाएँ अपनी रूप रचना में भिन्न होते हुए भी अपनी अर्थ-संरचना में समरूप है, उसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि अपने जातीय इतिहास, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्य एवं साहित्यिक सम्वेदना के सन्दर्भ में भारतीय साहित्य एक है भले ही वह विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त हुआ है। भारतीय साहित्य की **'आत्मा'** sole एक है भले ही उसके **'रूप'** form अनेक हैं।

भारतीय साहित्य के स्वरूप में चार विभिन्न धाराएँ उपलब्ध होती हैं—

1. वैदिक काल, उपनिषदकाल से चली आ रही आध्यात्मिक धारा। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के साथ-साथ ईशावास्योपनिषद् कठोपनिषद् व ब्राह्मण-आरण्यक

ग्रन्थों में प्रकृति-परिवेश के प्रति आध्यात्मिक भावधारा उपलब्ध होती है।

2. बौद्ध और जैन दर्शन से प्रभावित करुणा विश्वास त्याग सम्बन्धी जनाश्रित धारा।

3. मध्ययुगीन काल में सूफीवादी विचारधारा और इस्लाम से प्रभावित एकता, बंधुत्व एवं समानता की भावना से वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रतिरोध। निर्गुण और सगुण भक्ति धारा का पुनर्वलोकन। पुनर्जागरण की स्थिति।

4. ब्रिटिश, डच, फ्रांसीसी और पुर्तगीज लोगों के आगमन से वैज्ञानिक और औद्योगिक जन चेतना। समाज-सुधार और नवजागरण काल।

भारतीय साहित्य की संकल्पना अपने मूल स्वरूप में भाषा-भेद की सीमा को तोड़कर साहित्य के इतिहास और विलास को देखने की सौन्दर्यबोधी अपेक्षा है। वह **भाषागत विषयवस्तु** और **शैलीगत** विशिष्टता; गौड़ीय पाँचाली वैदर्भी आदि की पहचान को रेखांकित करती है। वह **स्थान** और **काल** की यथार्थता को एक स्तर पर स्वीकार करने और दूसरे स्वर पर उसकी सीमा का अतिक्रमण करने की आवश्यकता का प्रमाण है। भारतीय साहित्य के मूल में भारतीय संस्कृति की आधारमूल एकता और वैशिष्ट्य की पहचान सम्बन्धी छटपटाहट है।

हमारा बौद्धिक और सारस्वत प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि भारतीय साहित्य की संकल्पना को आगे बढ़ाते हुए विश्व साहित्य के परिप्रेक्ष्य में उसका मूल्यांकन करें। लेकिन विविध भारतीय भाषाओं के ज्ञान और उनके साहित्यिक विकास से अपरिचित रहने के कारण राष्ट्रीय सन्दर्भों में साहित्य की मूल्यवत्ता और भारतीय साहित्य के स्वरूप की विवेचना हम लोग सहीं ढंग से नहीं कर पाते हैं।

भारतीय साहित्य के स्वरूप की परिकल्पना और अवधारणा ही अपने आपमें तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा है। क्योंकि यहाँ एक से अधिक भाषा-साहित्य के सृजन और विश्लेषण की ओर संकेत है। बहुभाषी, बहुधर्मी देश होने के नाते हम लोग एक जटिल एवं संश्लिष्ट चेतना में जीते हैं। भले ही हम सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी या अंग्रेज़ी, मातृभाषा या राजभाषा का प्रयोग करते हों। पर बहुभाषिक स्थिति Multi lingual situation हमें बहुभाषी अवस्थिति Polyglot Orientation से भिन्न एक विशिष्ट चेतनता है। इस स्थिति में पनपने वाले हिन्दी, बंगला, कन्नड़, तेलुगू कोंकणी-मराठी भाषाओं के अध्ययन के लिए हमें उन मूल ऐतिहासिक तथा साहित्यिक स्रोतों से परिचित होना पड़ेगा जिनकी प्रेरणा से विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में आवेगात्मक तथा बौद्धिक अनुभूतियों का प्रसार हुआ है। शिशिरकुमार दास (1973) ने भारतीय साहित्य को सम्पूर्णता में; विभिन्न ऐतिहासिक काल खण्डों में विकास क्रम में देखने की माँग रची है।

प्राचीन युग में कबिलाई संस्कृति और राज्य-व्यवस्था के विकास के दौरान जिन वेदों-उपनिषदों की रचना हुई है तथा रामायण और महाभारत जैसे काव्य राज्य-व्यवस्था के दौरान रचे गए हैं। जिनका ऐतिहासिक समय आज से 5,500 वर्ष पूर्व से 3,500 वर्ष पूर्व ठहरता है। विभिन्न विद्वानों ने रामायण और महाभारत की रचना के लिए 3,000 से 1,500 वर्ष ईसा पूर्व का समय निर्धारित किया है। इस प्रकार भारतीय साहित्य की प्रारम्भिक रचनाओं में देव-असुर संग्राम, सत्य और असत्य के लिए युद्ध और मानवीय शक्तियों के विकास के लिए दैवी कृपा का अनुभव भी मिलता है। अतः कहा जा सकता है भारतीय साहित्य के प्रारम्भिक दौर में रहस्यवादी, ईश्वरवादी चेतना का भाववादी-प्रत्ययवादी दर्शन का प्रचार-प्रसार मिलता है। जिसका प्रभाव मिथकों और प्रतीकों के माध्यम से वर्तमान दौर में जारी है। चाहे वह दिनकर कृत 'रश्मिरथी' हो या 'परशुराम की प्रतीक्षा' अथवा विष्णु खाण्डेकर कृत 'ययाति' हो अथवा शिवाजी सावन्तकृत 'मृत्युंजय' उपन्यास। विश्वनाथ सत्यनारायण कृत 'रामायण कल्पवृक्षक' हो या के.एल. मुंशी कृत—पंच-पाण्डव उपन्यास।

पाश्चात्य प्राच्यविदों ने भारतीय साहित्य के नाम पर वैदिक, संस्कृत साहित्य अथवा मध्ययुगीन साहित्य तक ही अपने को सीमित रखा है। आलब्रेख वेबर (1850) विंटर नित्ज (1907) एडविन आर्नल्ड (1884) आर. डब्ल्यू. फ्रेजर (1917) आदि की पुस्तकों का नाम इस सन्दर्भ में लिया जा सकता है। पर इन विद्वानों की दृष्टि आलोचनात्मक न होकर विवरणात्मक ही अधिक रही है।

इन्द्रनाथ चौधुरी के शब्दों में ''आर.के. दासगुप्त ने मैक्समूलर की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ एनशिएण्ट लिटरेचर के सन्दर्भ में कहा है कि 'अधिकतर यूरोपीय इतिहासकारों ने प्राचीन साहित्य के प्रति आलोचनात्मक प्रतिक्रिया के स्थान

पर पुरातत्त्वीय दृष्टिकोण का ही प्रसार किया है। (1972 : 430) इन विद्वानों ने जब बाद में आधुनिक भारतीय साहित्य के इतिहास की रचना की ओर ध्यान दिया तब इन्होंने अपनी दृष्टि को भाषाविज्ञान, व्याकरण तथा शब्द कोशों तक सीमित रखा और साहित्य के विश्लेषण के प्रति अधिकतर उदासीनता ही दिखाई (सुजित मुखर्जी : 1975)। इस प्रकार 19वीं शती के अन्त तक भारतीय साहित्य के इतिहास से तात्पर्य हिन्दू-बौद्ध परम्परा में रचा जानेवाला प्राचीन संस्कृत (पाली और प्राकृत भी) साहित्य था। (तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य पृ. 81) बीसवीं शती के प्रारम्भ में जब विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य की रचना की ओर जब विभिन्न विद्वानों राहुल सांस्कृत्यायन, रामविलास शर्मा, नगेन्द्र, शिशिरदास आदि का ध्यान गया तब भारतीय साहित्य के बारे में यह प्रचलित धारणा थी कि यह भारत के विभिन्न प्रान्तों या भाषा-भाषी विद्वानों या रचनाकारों द्वारा रचित विभिन्न-भाषाओं के साहित्य का यह कुल योग है। पर इसे दार्शनिक, ऐतिहासिक प्रवृत्तिमूल्य, विषयवस्तु या शिल्पगत पैटर्नों में विश्लेषित किया जाना अभी शेष है।

बौद्ध दर्शन के त्रिपिटक और प्रमाण वार्तिक ग्रन्थ का प्रभाव विगत 2500 वर्षों से भारत, लंका, बर्मा, स्याम, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, तिब्बत, मध्य एशिया और अफगानिस्तान में नागार्जुन, असंग, बसु बंधु, शाक्य श्रीभद्र, वात्सायन, कुमारिल और वाचस्पति के माध्यम से पड़ा है। (रोहिताश्व : समकालीनता और शास्वतता पृ. 126) सूदूर दक्षिण के श्रावण बेलगोला—(कर्नाटक) और मडगाँव (गोवा) के भीतरी इलाकों में जैन दर्शन और श्रमण संस्कृति का प्रभाव विगत 2400 वर्षों से देखा जा सकता है। भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का प्रभाव मोंहजोदड़ों, तक्षशिला—नागार्जुन कोण्डा, एलोरा, अजंता, कोणार्क, खजुराहो और मथुरा-उज्जैन के स्थापत्य में परिलक्षित किया जा सकता है।

मध्ययुगीन दौर में भारतीय साहित्य के स्वरूप में एक अभूतपूर्व परिवर्तन—लक्षित होता है। सूफी विचारधारा और इस्लाम के आगमन से 9वीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक जाति परिवर्तन, धर्म सम्बन्धी आस्था, वर्ण और वर्ग के निषेध की भावना विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में उपलब्ध होती है। जिसका श्रेय सिद्धों-नाथों की परम्परा और उससे भी पूर्व काल से प्रवाहित चार्वाक—परम्परा द्वारा बाह्य आडम्बर व कर्मकाण्ड के निषेध एवं 11वीं शताब्दी में प्रवर्तित शैव-लिंगायत दर्शन—और 13वीं शताब्दी के ज्ञानेश्वर को दिया जाना चाहिए। जिसका परवर्ती विकास हमें नामदेव, तुकाराम, कबीर, सर्वज्ञम और वेमन्ना के कृतित्व में दिखाई देता है।

मध्ययुगीन भारतीय साहित्य रिनेसाँ यानि पुनर्जागरण काल का साहित्य कहलाता है। ईश्वर-ब्रह्म की सत्ता के सामने मानवमात्र की अस्मिता के वरण का साहित्य, जाति-धर्म, आस्था का वैविध्य और वर्ण-वर्ग-की विषमता के निषेध का साहित्य। 'यह सर्व भारतीय घटना 6-7वीं शती में तमिल के **आलवारों** और **नायनारों** द्वारा घटित होकर कर्नाटक महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान में प्रसारित होते हुए 13-14वीं शती में कश्मीर में फैल जाती है और 15-16वीं शती तक मध्य देश को अपने घेरे में ले लेती है। श्री चैतन्य के फलस्वरूप भक्ति के इस रूप का नवरूपायण होता है और बँगाल, असम और मणिपुर में इस आन्दोलन का प्रसार होता हैं। (इन्द्रनाथ चौधुरी : तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य पृ. 100)

'भक्ति द्राविडी उपजी लाये रामानन्द' वाली प्रसिद्ध लोकोक्ति; दक्षिण के भक्त-आचार्यों द्वारा प्रतिपादित—उपासना पद्धति सारे भारत में चर्चित रही है। शंकराचार्य, निम्बकाचार्य, माध्वाचार्य और रामानुजाचार्य आदि ने भक्ति-दर्शन और भगवत्-धर्म को नया आयाम दिया है। विभिन्न भाषाओं—कन्नड़, मलयालम, तेलुगू, मराठी आदि में विभिन्न दार्शनिकों, समाज सुधारकों ने पुनर्जागरण की ऐतिहासिक स्थिति निर्मित की है। फारसी पंजाबी, दक्खिनी हिन्दी-उर्दू में सूफीज्म और भारतीय चिन्तन परम्परा का आदान-प्रदान होता है। विभिन्न भाषाओं में रचित मध्ययुगीन साहित्य तसव्वुफ, अद्वैतवाद, निर्गुण-सगुण का द्वन्द्व एवं मिलन के सार्थक रूपों की तलाश करता है।

19वीं शताब्दी का ऐतिहासिक काल विश्व स्तर पर महान परिवर्तन का वैचारिक काल है। कारण औद्योगिक विकास समुद्री यातायात के विकास रेल-ट्राम-टेलीग्राफ, ट्रेन की सुविधा और युद्ध सामग्री के वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ मार्क्सवाद अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद ने वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न की है। भारतीय साहित्य तब उपनिवेशवाद और साम्राज्यवादी शोषण का प्रतिरोध रच रहा

था। एशियाई भूखण्ड में चीन, जापान, भारत और अफ्रीका देश संक्रमणशील स्थिति से गुज़र रहे थे। अतः भारतीय साहित्य के स्वरूप को वैश्विक सन्दर्भों में राष्ट्र विशेष की अस्मिता को, क्षेत्र-प्रदेश तथा राष्ट्र Nation State के अन्तर को, उसके तनाव और निर्मित पक्ष को पारस्परिक परिपूरक रूप में देखना श्रेयस्कर होगा। लोक और शास्त्र का संघर्ष, विश्व और राष्ट्र की अस्मिता का संघर्ष एक ही चिन्तन परम्परा के नैरन्तर्य के दो पहलू हैं।

योरोपीयन नवजागरण और **भारतीय नवजागरण** में कालगत, प्रवृत्तिगत, विचारगत अन्तर है। 14वीं शताब्दी के यूरोपीय नवजागरण की विशेषताएँ थीं वैज्ञानिक बुद्धिवाद, व्यक्ति स्वातन्त्र्य और मानवतावाद। जबकि हमारे यहाँ 19वीं शताब्दी के मध्यकाल से नवजागरण, स्त्री-शिक्षा स्वातन्त्र्य संघर्ष, देशभक्ति, समाज-सुधार, अतीत के साहित्य का पुनर्वलोकन, आर्यावर्त के मिथक और देश-जागरण के नए मॉडल विकसित होते हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राष्ट्रीय नवजागरण, वैश्विक सन्दर्भों में भारतीय अस्मिता, शैक्षणिक सुधार और आत्मगौरव के प्रश्न मुखर होते हैं। 19वीं शताब्दी के अन्त में समय की ऐतिहासिक माँग के अनुसार, राष्ट्रवाद, समाजसुधार, तथा पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति के समानान्तर क्षेत्रीय विकास, स्त्री-शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण और नवजागरण की तस्वीर मुकम्मिल होती है। समाज-सुधार, वर्ण-विषमता और राष्ट्रीय नवजागरण को लेकर—भारत की विभिन्न भाषाओं में पहला उपन्यास लिखा जाता है। हिन्दी में लाला श्री निवासदास, तमिल में सेमुएल वेदनायकम् पिल्लइ, मलयालम में इन्दु मेनन, तेलुगू में कृष्णमा चेट्टी, बांग्ला में मेरी हेचिन्स, पोर्तगीज भाषा में फ्रांसिस लुईस गोमिश, उर्दू में मिर्जा रुसवा आदि के उपन्यासों में समाज-सुधार की भावना और वर्ण एवं वर्ग की विषमता के निवारण की भावना पाई जाती है। किसी की एक भाषा प्रान्त का साहित्य अन्य भाषा-प्रान्त के साहित्य की विशेषताओं से प्रभावित होता है और एक सांस्कृतिक अन्तश्चेतना और अन्तर्धारा से संकलित होता है। भारतीय साहित्य अपनी संश्लिष्ट प्रवृत्ति और अन्तर्विरोधी भावधाराओं में, अध्यात्म और यथार्थ की बीथियों में विचरण करता हुआ-लोकचेतना, लोकधर्मी आस्था और लोकनिष्ठ संघर्ष में अभिव्यक्त होता है।

बीसवीं शताब्दी के भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक कार्य-कारणों की विवेचना मिलती है, राजनीतिक घटनाक्रम की तार्किक मीमांसा भी। बंग्ला भाषा का 'आनन्दमठ' उपन्यास हो या तेलुगू भाषा का वेयिपडगुलु (सहस्त्रफण) उपन्यास, उड़िया के फकीरसिंह सेनापति के उपन्यास हों या गुजराती के कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी की रचनाएँ; अंग्रेजी के मुल्कराज आनन्द हों या पंजाबी के कर्तार सिंह दुग्गल, इन सभी रचनाकारों ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद और सामन्तवादी पूँजीवादी प्रवृत्तियों के साथ-साथ विश्व स्तर पर व्याप्त षड्यन्त्रकारी साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का निषेध रचा है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में परिव्याप्त प्रेमचन्द, शरतचन्द्र, सुब्रह्मण्यम भारती की राष्ट्रीय चिन्ता को हम नजरूल इस्लाम, अरविन्द घोष और बाल गंगाधर तिलक के विजन से अलग करके नहीं देख सकते।

स्वातन्त्र्य पूर्व भारतीय भाषा साहित्य में राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष, गाँधी बनाम तिलक, नेहरू बनाम चन्द्रशेखर आजाद, जिन्ना बनाम सुभाषचन्द्र बोस को लेकर मत-मतान्तरों के साथ संघर्षरत रहा है तो स्वाधीनता पश्चात् का परिदृश्य भारत-पाक संघर्ष, भारत-चीन सीमा संघर्ष, मोहभंग, हताशा, बेरोजगारी, महँगाई के दुष्चक्रों को अनावृत्त करता है। आपात्काल, नक्सलवाद का उदय, वामपन्थी चेतना का उभार-विश्वव्यापी वैश्वीकरण की त्रासदी हमारे पारम्परिक धर्म दर्शन, समाज, साहित्य एवं समाजशास्त्र के लिए अभिनव चुनौतियों के हाशिए रचती है।

वर्तमान दौर में भारतीय भाषा साहित्य में दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं एक ओर भारतीय साहित्य की सशक्त अविच्छिन्न धारा में पनपने वाला मिथकीय एवं प्रतीकात्मक साहित्य, जो हिन्दी में अँधा युग, कनुप्रिया (धर्मवीर भारती) उर्वशी, (दिनकर) संशय की एक रात (नरेश मेहता), राम की शक्ति पूजा (निराला) विश्वबाहु परशुराम जोगी मत जा, सरहप्पा (विश्वम्भरनाथ उपाध्याय) मराठी में ययाति (वि.स.खाण्डेकर) मृत्युंजय (शिवाजी सावंत) कन्नड़ के 'पर्व' (भैरप्पा) गुजराती के पंच-पाण्डव, सत्यभामा (के.एल. मुंशी) उड़िया की द्रौपदी (प्रतिभा राय) नामक कृतियों में रूपायित होता है और दूसरी ओर अंग्रेजी एवं पाश्चात्य साहित्य के प्रति औपनिवेशिक आकर्षण रखने वाला रुझान जो अज्ञेय, निर्मल वर्मा, राजाराव, कमला मार्कण्डेय,

शंकर, बुद्धदेव बसु, राजकमल चौधरी, विश्वास पाटिल, महाश्वेता देवी, यू.आर.अनन्त मूर्ति आदि की रचनाओं में एक कलात्मक विजन और यथार्थपरक अभिरुचि के **तनाव** में विकसित होकर हमारे सामने आता है। यह सच है कि हम उपनिवेशवादी स्थिति और वैश्वीकरण के दौर में प्रेमचन्द के साहित्य को रूस के गोर्की, चीन के लूशन के लेखकीय विजन से अलग करके नहीं देख सकते हैं।

स्वाधीनता के बाद भारतवर्ष की गणना तीसरी दुनिया के देशों में होती है, जो अल्पविकसित देश हैं। लेकिन इससे हमारे अतीत के गौरव और वर्तमान दौर की विसंगतियों में जारी डायलेक्टिक्स द्वन्द्वात्मकता में अन्तर नहीं आता है। भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति, चीन, रोम, यूनान और मिस्त्र के समकक्ष और उन्नत रही है। भारतीय साहित्य के साथ-साथ अरबी-फारसी साहित्य के ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं काव्यशास्त्रीय सम्बन्ध विचार-दर्शन के नए पहलू रेखांकित करते हैं। सूफी-सन्त कवि ही साहित्य एवं संस्कृति के सेतुबन्ध नहीं बनते हैं बल्कि कबीर की परम्परा के, सिद्धों-नाथों की वैचारिक परम्परा में लोकायत-चार्वाक दर्शन की अभिनव परम्परा में '**दाराशिकोह** ने मध्ययुगीन दौर में बावन उपनिषदों का 'सिर्रे अकबर' नाम से फारसी में अनुवाद किया था। हिन्दू धर्म और इस्लाम में एकता की खोज करने वाली पुस्तक फारसी में '**मज्म-अल-बहरैन**' नाम से रची और स्वयं उसका उल्था समुद्र -संगम शीर्षक से संस्कृत भाषा साहित्य में रचा। भाषा में रचे हुए समर्थ रामदास के 'मनाचे श्लोक' का प्रभाव शाह तुराब, 'मन सम्झावन' नामक कृति में इस्लाम और हिन्दू धर्म की मान्यताओं सहवर्ती रूप में स्वीकारते हैं। 17वीं शती में, भले ही उसकी लिपि फारसी व जबान दक्खिनी रही हो।

भारतीय साहित्य के स्वरूप में, विभिन्न भाषा-साहित्य संरचना में एक 'ऐतिहासिक धारावाहिकता और वंशानुगत बंध की प्रवृत्ति पाई जाती है। कारण धर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति और सामाजिक विकास की धारणाएँ परस्पराश्रित और परस्पर पोषित भी हैं। उदाहरणतः राधा-कृष्ण की प्रणय लीलाओं की परम्परा जयदेव, विद्यापति, सूरदास, नन्ददास, मीराबाई, देव, बिहारी, भारतेन्दु, हरिऔध और जानकी वल्लभ शास्त्री के काव्य में एक क्रम को ही सूचित करती हैं। पर जयदेव और विद्यापति, सूरदास और बिहारी भारतेन्दु और हरिऔध की राधाएँ भिन्न-भिन्न 'ऐतिहासिक विकासों' के दौरान से गुजरी हैं, फिर भी उनमें एक 'वंशानुगत बँध Hereiatery Bound है। अतः कला के विकास में प्रत्येक ऐतिहासिक युग की कला सिद्धान्त में भिन्न होकर भी (वंशानुगत बंध के कारण) जातीयता की विलक्षणताओं को अंगीकार करती चलती है। (रमेश कुन्तल मेघ : क्योंकि समय एक शब्द है पृ. 34) चाहे वह स्त्री-विमर्श हो या दलित-विमर्श के प्रसंग।

वास्तव में भारतीय साहित्य अथवा **भारतीय संस्कृति का समाज**शास्त्र हमारे सामने यह प्रश्न मुखर रूप में रखेगा कि भारतीय साहित्य के सौन्दर्यबोध अथवा भारतीय साहित्य के स्वरूप, शिल्प-पैटर्न के विवेचन हेतु भारतीय ज्ञान और सृजन की किन परम्पराओं, रचनाओं और भाषाओं को विश्लेषण का आधार बनाया जाए। केवल प्राच्यविद् वैदिक पौराणिक साहित्य के आधार अथवा मध्ययुगीन धर्म, दर्शन व साहित्य पर आधारित साहित्य व संस्कृति के स्वरूप का विवेचन अधूरा होगा। उसकी पूर्णता के लिए संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश लोकभाषाओं तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य को, उनकी डायलेक्टिक्स द्वन्द्वात्मकता में, अन्तर्विरोधी प्रक्रिया की पड़ताल में देखना श्रेयस्कर होगा। बकौल मैनेजर पाण्डेय के जब हम वैदिक साहित्य के सामने धम्मपद, त्रिपिटिक और जातक कथाओं को, रामायण के साथ महाभारत को (चार्वाक व लोकायत दर्शन को) कालिदास के साथ अश्वघोष को, मनुस्मृति के साथ वज्र सूची को और तुलसीदास के साथ कबीरदास को रखेंगे तभी उस द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का बोध होगा जिससे गुजरकर भारतीय (साहित्य और) संस्कृति का निर्माण और विकास हुआ है। (मैनेजर पाण्डेय : हिन्दी साहित्य सम्मेलन गुवाहटी 58वाँ अधिवेशन) न तो हम अतीत के मिथकों, प्रतीकों, प्रसंगों, साहित्य परम्पराओं, सामाजिक, दार्शनिक अवधारणाओं को विस्मृत कर सकते हैं और न ही पाश्चात्य देशों के ज्ञान-विज्ञान, सामाजिक-कला विजनों के विकास व प्रभाव को वैश्वीकरण के दौर में असम्पृक्त मान सकते हैं। न ही हम वर्ग-भेद और वर्णभेद को भुला सकते हैं। और न ही शास्त्रीय परम्परा और लोक-परम्परा के अनवरत् संघर्ष को भारतीय साहित्य के स्वरूप में लोक और शास्त्र का द्वन्द्व भी है और समन्वय भी। इसमें मार्गी-देसी, शास्त्राचार-देशाचार, नाट्यधर्मी और लोकधर्मी चेतना का समाहार है। भारतीय साहित्य अभिजात्य

वर्ग का है उतना लोकधर्मी जनचेतना का। वेद चार हैं तो नाटक पाँचवां वेद। चार्वाक-लोकायत परम्परा का द्वन्द्व रामायण और महाभारत की वैष्णवी-सनातन परम्परा से रहा है। तो जैन और बौद्ध धर्म की आचार-संहिता शाक्त और तान्त्रिक कर्मकाण्ड के विपक्ष में उभरी है। वस्तुतः भारतीय साहित्य की भारतीयता विविध धर्मों, विविध जातियों, विविध विचारधाराओं की समन्वित धरोहर है। 'एकता में अनेकता' अगर सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर है तो 'अनेकता में एकता' दार्शनिक और वैचारिक समाहार भाव में है।

भारतीय साहित्य के वर्तमान स्वरूप में हम अध्यात्म की आदर्शवादी भावना के साथ-साथ यथार्थ की विद्रूपताओं से टकराव की स्थिति में जी रहे हैं। हम अतीत के इतिहास, मिथक, आदर्श एवं प्रतीक के साथ-साथ भविष्य के विजन से भी जुड़े हैं। हम एक ही साथ अतीत की विस्मृति और भविष्य के संभावनापूर्ण दृश्य पटल के संधि स्थल पर संचरण शील हैं।

मातृभाषा और सम्पर्क भाषा के द्वन्द्व में जीते हुए एक ओर अपनी प्रान्तीय विशिष्टता को जीवन्त रखना चाहते हैं तो दूसरी ओर वैश्विक भाषा-साहित्य सन्दर्भों में अपनी भारतीय अस्मिता की छटपटाहट लिए हुए हम चाणक्य, गौतमबुद्ध, कालिदास, अश्वघोष, कबीर, तुलसी, गाँधी, तिलक और भगतसिंह के ओजस्वी-दार्शनिक भाव के साथ-साथ उपन्यास सृजन में, प्रेमचन्द हजारीप्रसाद द्विवेदी, रेणु, महाश्वेता देवी, शिवराम कारंत, प्रतिभा राय और दामोदर मावाजो की जिजीविषा एवं मानवीय मूल्यवत्ता के साथ सक्रिय हैं। वैश्विक स्तर पर मार्क्स, सार्त्र और फ्रायड—फ्लाबेयर, डी. एच. लॉरेन्स आदि को हम विजन के स्तर पर विस्मृत नहीं कर पाते हैं। वैश्विक सन्दर्भों में विशिष्ट सृजकों से हम सृजनात्मक प्रतिस्पर्धा अपनाते हैं चाहे वे गोर्की, दास्तोएवस्की, लू शून, वाल्टर स्कॉट, बादलेयर, आरविंग स्टोन या ग्रेबियल मारक्वेज ही क्यों न हों।

सारांशतः भारतीय साहित्य का वर्तमान स्वरूप दो समानान्तर धाराओं में प्रवाहित है। एक धारा परम्परागत संस्कारों, आस्थाओं के कारण मिथक, प्रतीक व वृतान्तों रूपकों के माध्यम से मानवीय समस्याओं का निराकरण ययाति (खांडेकर) पर्व (भैरप्पा) सहस्रफण (विश्वनाथ सत्यनारायण) उर्वशी (दिनकर) द्रौपदी (प्रतिभा राय) मृत्युंजय (शिवाजी सावंत) सत्यभामा (के.एल.मुंशी) जोगी मत जा (विश्वम्भरनाथ उपाध्याय) आदि कृतियों में परिलक्षित होती है तो दूसरी धारा वैश्विक दर्शन एवं विभिन्न विचारधाराओं के आलोक में नदी के द्वीप (अज्ञेय) रात भर वर्षा (बुद्धदेव वसु) वे दिन (निर्मल वर्मा) मामूली चीजों का देवता (अरुन्धती राय) चौरंगी (शंकर) मूकज्जी (शिवराम कारंत) कामयोगी (सुधीर कक्कड़) संस्कार (यू.आर. अनंत मूर्ति) आदि रचनाओं में प्रतिबिम्बित होती है।

काव्य सृजन के स्तर पर जहाँ हिन्दी की प्रगतिशील धारा निराला, मुक्तिबोध, शमशेर, धूमिल केदारनाथ सिंह, दुष्यन्त कुमार और आलोक धन्वा की रचनाओं में झिलमिलाती है। वहाँ तेलुगू भाषा-काव्य में वह—श्री, श्री शेषेन्द्र शर्मा, निखिलेश्वर, ज्वालामुखी, शिवारेड्डी, और वोल्गा आदि की रचनाओं में अन्तःसृजना के रूप में पाई जाती है। सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के स्वरूप में अन्तश्चेतना एक है विविधता में अतः संगीत की गुँजन सी। वह आत्मा के रूप में, अमूर्त रूप सी एक हैं, पर उसकी अन्तर्धाराएँ विविधवर्णी, विविध स्वरूपा और विवादी-संवादी स्वरों सी कम लोमहर्षक नहीं है।